12

भाषा व्यक्ति के लिए क्यों आवश्यक है?

भाषा संवाद व सम्प्रेषण का माध्यम है, चाहे वह बोलचाल के रूप में हो, चाहे लेखन के रूप में या फिर संकेतों के रूप में। यह प्रतीकों के निर्धारित ढाँचे पर आधारित है। हमारे लिए भाषा सम्प्रेषण का एकमात्र तरीका नहीं है। इसके अलावा सम्प्रेषण के बहुत से गैर-शाब्दिक तरीके भी होते हैं। अलग-अलग संस्कृति में भावनाओं व सन्देशों के सम्प्रेषण हेतु अलग-अलग गैर-शाब्दिक तरीके होते हैं। इन्सान और जानवरों के गैर-शाब्दिक सम्प्रेषण में कुछ-कुछ समानता होती है परन्तु भाषा हमारे जीवन में अत्यधिक ज़रूरी है। हमें इसकी ज़रूरत दूसरों से बात करने, उन्हें सुनने, पढ़ने व लिखने के लिए होती है। भाषा हमें बीती हुई घटनाओं का विस्तार से वर्णन करने व भविष्य की योजना बनाने के लिए तैयार करती है। भाषा के बिना हमारी सोच आज और अभी पर ही केन्द्रित होती। भाषा ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सूचना व समझ को हस्तान्तरित करना सम्भव बनाती है और एक समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर बनाती है। जो भाषा हम उपयोग करते हैं वह न केवल हमारी संस्कृति को प्रभावित करती है बल्कि हम दुनिया के बारे में कैसे सोचते हैं, इसे भी प्रभावित करती है।

भाषा व संज्ञान

यह सही है कि हम हमेशा शब्दों में नहीं सोचते, लेकिन शब्दों के बिना हमारी सोच बहुत ही सीमित हो जाएगी। भाषा का सोच व विचार के साथ सम्बन्ध मनोवैज्ञानिकों के लिए गहरी रुचि का विषय रहा है। कई मनोवैज्ञानिकों ने कहा है कि हम भाषा के बिना सोच ही नहीं सकते। इस विचार पर काफी गरमागरम बहस हुई है।

संज्ञान में भाषा की भूमिका

महत्वपूर्ण संज्ञानात्मक गतिविधियों में क्या भाषा कोई भूमिका निभाती है? अगर हाँ, तो वह क्या है? इस बारे में कई तरह से सोचा जा सकता है और बात की जा सकती है। संज्ञान के बारे में सोचें तो एक बात तो यह कि हमारी याददाश्त सिर्फ ध्वनियों और छवियों में ही संग्रहित नहीं होती वरन् शब्दों के रूप में भी संग्रहित होती है। भाषा हमें सोचने, निष्कर्ष निकालने, मुश्किल निर्णय लेने और समस्याएँ हल करने में मदद करती है। भाषा, विचारों को व्यक्त करने के साथ-साथ उन्हें व्यवस्थित, क्रमबद्ध व सूत्रों में पिरोने के उपकरण के रूप में देखी जा सकती है।

इससे एक सवाल उठता है जिसके बारे में पिछले लेख में भी बात की गई है। सवाल यह है कि जिन लोगों के पास ऐसी भाषाएँ हैं जिसमें किसी सन्दर्भ के लिए ज़्यादा शब्द हैं, तो क्या वे उस सन्दर्भ को ज़्यादा बारीकी से समझ सकते हैं, महसूस कर सकते हैं, और उसके बारे में ज़्यादा गहराई से सोच सकते हैं।

यह सोचकर देखें कि जो लोग रेगिस्तान में रहते हैं, उनके दिमागी पुस्तकालय में तो ऊँट के बारे में बहुत समृद्ध अनुभव होंगे। इसी प्रकार, अगर आप ताड़ व अन्य तरह के पेड़ों और पक्षियों व तोतों से भरे उष्णकटिबन्धीय इलाके में रहते हैं तो बर्फ के बारे में आपकी सहज शब्दावली सीमित होगी। इसी तरह, जिस प्रदेश में चावल अधिक उगाया व खाया जाता है, सामान्यत: वहाँ के लोगों की अलग-अलग तरह के चावल व उनसे बनने वाले विभिन्न व्यंजनों की शब्दावली समृद्ध होगी। इस सबके बावजूद यह बात विवादास्पद है और यह ज़ोर देकर कहना सम्भव नहीं है कि हमारी शब्दावली की हमारे विचार व मानसिक ढाँचे को बनाने में कोई अहम भूमिका है।

सेपियर-वोर्फ के सिद्धान्त के विपरीत इलेनोर रोश द्वारा किए गए एक अध्ययन ने दिखाया है कि किन्हीं लोगों के पास अवधारणाओं के लिए शब्द न होना उनकी चीज़ को महसूस कर पाने व उसके बारे में सोच पाने की क्षमता को रोकता नहीं है। रोश ने न्यू गिनी में रहने वाले दानी समूह के लोगों के साथ उनकी रंगों की पहचानने की क्षमता का अध्ययन किया। अपने अध्ययन के आधार पर रोश ने यह निष्कर्ष दिया कि आम तौर पर लोग रोज़मर्रा में काम आने वाली चीज़ों और रोज़ हुए अनुभवों की श्रेणियाँ बनाने में अमूर्त श्रेणियों और परिभाषाओं पर कम भरोसा करते हैं। वे इन श्रेणियों को बनाने के लिए वस्तुओं या अनुभवों को उनकी मूल श्रेणी (Prototype), जो उनके हिसाब से उनकी उत्कृष्ट श्रेणी को प्रस्तुत करती है उससे तुलना करते हैं। रोश ने बताया कि दानी लोगों के पास रंगों के लिए उस तरह से नाम नहीं हैं जैसे अंग्रेज़ी में हैं (उनकी भाषा में रंगों को अलग-अलग करने के लिए केवल दो पद हैं 'हल्का, चमकीला' और 'गहरा, मंद उदासीन'), अगर भाषाई सापेक्षता व भाषा द्वारा सीमाबद्ध विचार परिधि की धारणा सही है तो दानी लोग हरे, नीले, लाल, पीले और जामुनी रंग के बीच अन्तर नहीं कर सकेंगे। किन्तु रोश ने पाया कि दानी समूह के लोग अलग अलग रंग के आधार पर चीजों को वर्गीकृत कर पाते हैं यानी वे रंगों में उसी स्तर पर अन्तर कर पाते हैं

जिस स्तर पर अंग्रेज़ी भाषा बोलने वाले लोग जिनके रंगों के लिए, दानी लोगों की तुलना में कहीं ज़्यादा शब्द हैं। ऐसा लगता है कि रंगों की अनुभूति व उन्हें देख पाने की क्षमता हमारी जैविक काबिलियतों में शामिल है और वह हमारे रेटिना में उपस्थित रिसेप्टर के कारण है। भाषा आप को यह क्षमता देती है कि जो आप देख रहे उसे नाम दे पाएँ लेकिन वह आपको उसे दूसरे रंग से अलग करने की अतिरिक्त क्षमता नहीं दे सकती। दानी लोगों के साथ किए अपने इस अध्ययन के आधार पर रोश ने दावा किया कि हर मूल श्रेणी (प्रोटोटाइप) का एक मनोवैज्ञानिक आशय होता है और यह आशय सांस्कृतिक विभिन्नताओं पर आधारित व उससे सीमित नहीं होता। यह आशय ही तय करता है कि ये मूल वस्तुएँ मानसिक पटल पर कैसे निरूपित होंगी। उदाहरण के लिए, हमारे मानस में पक्षी की जो छवि है उसका आशय पक्षी की मूल छवि के आधार पर ही बना होगा। किन्तु हमारी संस्कृति की मूल छवि और किसी अन्य संस्कृति की मूल छवि से फर्क हो सकती है, जबकि उनका आशय एक ही है। उदाहरण के लिए, हमारे लिए जो उल्लू की मूल छवि है वह अफ्रीका में रह रहे लोगो के मानस में जो छवि है उससे अलग हो सकती है और होगी ही क्योंकि वह उनके अनुभवों व शब्द संसार के आधार पर रचित होगी।

भाषा में संज्ञान की भूमिका

शोधकर्ता यह भी देखने का प्रयास कर रहे हैं कि भाषा के लिए क्या संज्ञान एक महत्वपूर्ण नींव है। अगर सामान्य तौर पर भाषा संज्ञान को प्रतिबिम्बित करती है, तब हम यह अपेक्षा करेंगे कि सामान्य समझ, भाषाई क्षमता और बुद्धि क्षमता में करीबी रिश्ता हो। खास तौर पर हम यह अपेक्षा करेंगे कि एक क्षेत्र (भाषा) में आने वाली समस्याओं के तुल्य समस्याएँ दूसरे क्षेत्र (संज्ञान) में भी आएँगी। जैसे, हम यह कल्पना करेंगे कि सामान्य बौद्धिक पिछड़ापन भाषाई क्षमता में भी पिछड़ेपन को इंगित करेगा। यह कई बार होता है पर हर बार नहीं। क्या आपने कभी ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं देखा है जो बौद्धिक रूप से पिछड़ा हुआ है या मानसिक रूप से कमज़ोर है, पर उसकी भाषाई क्षमताएँ बिल्कुल दुरूस्त हैं? वह अच्छे से बोल पाता है, दूसरों की बातें सुनकर उचित और सटीक प्रतिक्रिया कर सकता है?

शोधकर्ताओं ने पाया है कि बौद्धिक व पेशीय विकास में पिछड़ेपन के साथ भाषाई क्षमताओं में हमेशा कमी नहीं पाई जाती। उदाहरण के लिए, विलियम्स सिंड्रोम, एक तरह की आनुवंशिक बीमारी है। यह बच्चों की शारीरिक वृद्धि, हावभाव, शारीरिक दिखावट, संज्ञानात्मक क्षमताओं (जैसे वर्गीकरण करना, विश्लेषण करना, तर्क करना) पर प्रभाव डालती है। इन बच्चों को नई चीज़ें सीखने में भी परेशानी होती है और ये बच्चे बौद्धिक रूप से अन्य हमउम्र सामान्य बच्चों से पिछड़े लगते हैं। किन्तु इनकी भाषाई क्षमता औसत स्तर के समकक्ष ही होती है। भाषा को सम्प्रेषण के लिए उपयोग करने में भी उनकी क्षमता कम नहीं होती। विलियम्स सिंड्रोम की प्रकृति यह इंगित करती है कि इन्सान के मस्तिष्क में भाषाई क्षमताओं वाली जैविक रूप से तैयार सोचने की इकाइयाँ होती हैं। यानी मस्तिष्क को सभी कुछ करने वाली संज्ञान क्षमता वाली समग्र इकाई, जिसमें भाषा भी शामिल है, के रूप में नहीं देखा जा सकता।

बहरे बच्चों पर किए गए अध्ययनों से भी इस बात का प्रमाण मिलता है कि सम्पूर्ण संज्ञान क्षमता, भाषाई क्षमता से फर्क है। सोचने व समस्या हल करने के बहुत से काम बहरे बच्चे अपनी उम्र के बाकी बच्चों के समान ही कर पाते हैं। इस अध्ययन में शामिल बहुत से बच्चों को लिखित भाषा अथवा संकेत भाषा का भी ज्ञान नहीं था (फर्थ, 1977)। यानी किसी भी तरह का भाषाई अनुभव व क्षमता उन्हें मदद नहीं कर रही थी। संक्षेप में कहें तो इसके बावजूद विचारों का ढाँचा हमारी भाषाई क्षमता को प्रभावित करता है और भाषाई क्षमता सम्भवत: विचारों के ढाँचे को। ऐसे भी प्रमाण उपलब्ध हैं जो दिखाते हैं कि ये दोनों (संज्ञान व भाषा) एक ही ढाँचे के हिस्से नहीं हैं। इनका विकास मानव की जीव वैज्ञानिक विकास प्रक्रिया में मस्तिष्क के अलग-अलग हिस्से के मॉड्यूल (Modules) के रूप में हुआ है।

सीखना क्या जैविक मंत्र है

सन् 1799 में 11 वर्ष का एक बच्चा फ्रांस के जंगलों में मिला। चूँकि वह इन्सानों के पास नहीं आता था इसलिए उसे पकड़ना पड़ा था। इसको ऐवरॉन के जंगली लड़के के नाम से जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि वह छ: साल से जंगल में अकेला रह रहा था। जब उसे पकड़ा गया तो उसने बातचीत का कोई प्रयास नहीं किया। कई वर्षों और कई प्रयासों के बाद भी उसने ठीक से अपनी बात समझाना व दूसरों की बात समझना नहीं सीखा। यह वाकया 'बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं' के बारे में कई सवाल उठाता है। क्या भाषा के नियम बना पाना और उनसे असंख्य शब्द बना पाना जैविक कारकों और जैविक विकास के कारण है? या फिर भाषा परिवेश से ही सीखी जाती है? या फिर उसके जैविक कारण भी हैं, पर वह परिवेश से भी प्रभावित होती है? इन प्रश्नों के उत्तर जटिल हैं और अभी भी शोध का केन्द्र हैं।

हम इस बात पर लौटेंगे लेकिन इसके पहले भाषा की क्षमता के विकास के बारे में कुछ बातचीत करते हैं। हालाँकि अलग-अलग लोग अलग-अलग अनुमान लगाते हैं, फिर भी सामान्यत: वैज्ञानिक मानते हैं कि इन्सानों ने लगभग एक लाख साल पहले भाषा हासिल की। इस प्रकार जैविक विकास के सन्दर्भ में भाषा एक काफी नई इन्सानी क्षमता है। लेकिन कई विशेषज्ञ मानते हैं कि जैविक विकास का ढाँचा जिसने इन्सानों को भाषाई क्षमता वाला जीव बनाया, पूरी भाषाई क्षमता के आने के बहुत पहले ही इन्सान के पास आ चुका था। पिंकर अपनी पुस्तक में कहते हैं कि इन्सान के लिए भाषा एक जैविक क्षमता है जो एक नैसर्गिक प्रवृति है। उसी तरह जैसे मकड़ी के पास जाला बनाने की प्रवृति है। पिंकर की बात को कई अन्य विचारक नकारते हैं। खास तौर पर टोमासेलो व उनके सहयोगी कहते हैं कि भाषा स्वतः विकसित नहीं हुई बल्कि सामाजिक अन्तःक्रिया की जरूरत का नतीजा है। बहरहाल, इन सबके बीच हम यह तो कह ही सकते हैं कि हमारे पूर्वजों के मस्तिष्क, तंत्रिका तंत्र और वाक् तंत्र (बोलने का ढाँचा) लाखों साल में बदले। एक बार जीव वैज्ञानिक क्षमता आने के बाद इन्सान आवाज़ें निकालने व चिल्लाने से बढ़कर धीरे-धीरे अमूर्त भाषा तक पहुँचा। इस भाषाई क्षमता ने इन्सानों को बाकी जानवरों के मुकाबले फलने-फूलने, साथ काम करने व प्रकृति

से जूझ कर उसे अपने अनूकूल बनाने में ज़्यादा सक्षम बना दिया और हर तरह के संघर्ष में उनके बचने की सम्भावना को भी बहुत बढ़ा दिया।

भाषा यानी अन्तर्निहित क्षमता?

अब यह व्यापक रूप से माना जाता है की आज के सभी इन्सानी बच्चों में भाषा सीखने की नैसर्गिक क्षमता दिखती ही है। भाषा वैज्ञानिक नोम चॉमस्की (1975) उनमें से एक हैं जो कहते हैं कि इन्सान भाषा सीखने के लिए जीव वैज्ञानिक रूप से तैयार होकर पैदा होते हैं। यह उनमें अन्तर्निहित है कि वे एक विशेष समय पर और विशेष तरह से भाषा सीखेंगे। चॉमस्की व कई और भाषा विशेषज्ञों के अनुसार भाषा के जीव वैज्ञानिक होने का पक्का सबूत यह है कि पूरी दुनिया के अलग-अलग भाषा बोलने वाले व अलग-अलग मात्रा में अलग-अलग प्रकार के परिवेश से भाषाई अनुभव प्राप्त करने वाले बच्चे भाषा सीखने के चरण विकास क्रम में लगभग साथ-साथ व उसी क्रम में हासिल करते हैं। जैसे कि कई ऐसी भी संस्कृतियाँ हैं जिनमें जब तक कि शिशु एक साल के न हो जाएँ वयस्क उनसे कोई बात नहीं करते। फिर भी शिशु भाषा सीख लेते हैं। इसके अलावा जितनी छोटी उम्र में बच्चे भाषा सीख लेते हैं उसको समझने के लिए जीव वैज्ञानिक कारकों के अलावा और कोई कारक उपयुक्त नहीं लगता (लॉक, 1999; मारातोस, 1999)। चॉमस्की कहते हैं कि बच्चे सुनकर व महज़ सुनी बात की नकल करके, सारे नियम व भाषा का ढाँचा नहीं अख्तियार कर सकते। इसके स्थान पर यही मानना होगा कि प्रकृति ने हर बच्चे के दिमाग में सार्वभौमिक व्याकरण का स्वरूप पहले से ही डाल रखा है जो उन्हें किसी भी भाषा के बुनियादी नियमों को समझने और जो सुन रहे हैं उन पर लागू करने की क्षमता देता है। वे भाषा सीख जाते हैं, बगैर उसकी संरचना के तर्कों को जाने।

जो लोग मानते हैं कि भाषा का एक जीव वैज्ञानिक आधार है, उनकी बात के समर्थन में बहुत से प्रमाण हैं। तंत्रिका-तंत्र विज्ञान में हुए शोध ने यह दिखाया है कि दिमाग में विशेष हिस्से होते हैं जिनकी प्रकृति उन्हें भाषा के लिए उपयोग करने योग्य बनाती है। अभी जो प्रमाण इकट्ठे हो रहे हैं वे भी कुछ हद तक दिखाते हैं कि भाषा प्रसंस्करण (Processing) ज़्यादातर मस्तिष्क के बाएँ अर्द्ध गोलार्द्ध में ही होता है (डिक व अन्य, 2004, ग्रॉडज़िन्स्की, 2001)। यह बात उन्होंने जीवित व्यक्ति के काम कर रहे मस्तिष्क की छवि देखकर कही। यह प्रक्रिया जिसे इमेजिंग टेकनीक (Imaging Technique) कहते हैं, फोटोग्राफी या तस्वीर या होलोग्राम बनाने से फर्क होती है। शोधकर्ताओं ने पता किया है कि लगभग नौ महीने के शिशु के दिमाग का वह हिस्सा जो स्मृति का भण्डार व उसकी विषय सूची है, पूरी तरह से कार्य करने लगता है (ब्लूम, नेल्सन और लेजरसन, 2001)। इस दौरान शिशु शब्दों को अर्थ देने में सक्षम बनता प्रतीत होता है। इससे भाषा, संज्ञान व दिमाग के विकास में सम्बन्ध दिखता है।

परिवेश व भाषा

व्यवहारवादी भाषा को जीव वैज्ञानिक रूप से निर्धारित नहीं मानते। वे कहते हैं कि भाषा मुख्यत: परिवेश के प्रभाव से निर्धारित होती है। उदाहरण के तौर पर, स्किनर (1957) ने कहा

है कि भाषा इन्सान के दूसरे व्यवहारों जैसे चलना, भागना आदि जैसा ही एक व्यवहार है। उन्होंने कहा कि सभी व्यवहार (जिसमें भाषा भी शामिल है) पुनरावर्ती अभ्यास व पुनर्बलन (Reinforcement) से सीखे जाते हैं। अलबर्ट बंदुरा (1977) ने बाद में इस बात पर भी ज़ोर दिया कि भाषा नकल द्वारा सीखी जाती है।

रोजर ब्राउन (1973) ने छोटे बच्चों व उनके माता-पिता को अन्त:क्रिया करते समय कई-कई घण्टों तक अवलोकन किया। वे इस बात का प्रमाण चाहते थे कि बच्चे माता-पिता के पुष्टीकरण व शाबाशी (मुस्कुराहट, प्यार से भींचना, पीठ थपथपना, ठीक करने के लिए फीडबैक देना आदि) से भाषा के नियम सीखते हैं। उन्हें पता चला कि हालाँकि माता-पिता बच्चों के सही वाक्य बोलने पर मुस्कुराते और शाबाशी देते थे लेकिन कई बार वह व्याकरणीय रूप से गलत बात पर भी शाबाशी दे देते थे। ब्राउन का निष्कर्ष था कि इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि पुष्टीकरण, पुनर्बलन भाषा के नियमों की समझ के विकास में मदद करता है। बच्चे बहुत से नए वाक्य बोलते हैं, जबकि ये वाक्य बच्चों ने कभी सुने नहीं होते। एक बच्चा यह वाक्य सुनेगा कि 'प्लेट ज़मीन पर गिर गई', परन्तु तत्काल ही यह भी कह पाएगा कि 'मेरा गिलास टेबल पर गिर गया।' यह भी कि एक बच्चा 'चाकू' को 'काचु' कहेगा और बार-बार पुनर्बलन के बावजूद भी वह 'काचु' ही कहता रह सकता है। नकल व पुष्टीकरण इन उदाहरणों को समझा ही नहीं सकते।

हालाँकि नकल व पुष्टीकरण बच्चों द्वारा भाषा के नियम पकड़ने के लिए ज़िम्मेदार नहीं हैं, फिर भी यह आवश्यक है कि बच्चे भाषा की क्षमता रखने वाले लोगों के बीच रहें (स्नो, 1999)। ऐवरॉन के जंगल से आया लड़का बचपन की शुरुआत में ऐसे लोगों के साथ नहीं रहा था जो भाषा जानते हों। इससे उसके भाषाई विकास को नुकसान पहुँचा था।

बातचीत, समझ व भाषा का विकास

भाषा सीखने के ढंग पर अध्ययन का एक और विषय, माँ का शिशु के सामने बोलना व भाषाई क्षमता के विकास के सम्बन्ध का है (हटनलोशर व अन्य, 1991)। वे माएँ जो शिशुओं के साथ भाषा का उपयोग ज़्यादा करती थीं, उनके बच्चों के शब्दकोश अन्य बच्चों से काफी अधिक थे। दूसरे जन्मदिवस तक आते-आते शब्द क्षमता के ये अन्तर काफी स्पष्ट दिखते थे।

भाषा सीखने में मदद कैसे हो?

क्या हम ऐसा कह सकते हैं कि भाषा सीखने में मदद करने के लिए कोई सर्वत्र काम में लाए जा सकने वाले तरीके हो सकते हैं? शायद ऐसा कहना सरल नहीं है, किन्तु कुछ सिद्धान्त हैं जिनका पालन करने से फायदा होगा।

- एक सक्रिय बातचीत करने वाले साथी बनें। शिशु से बातचीत करने में वयस्क पहलकदमी करें। अगर बच्चा पूरे दिन किसी बालवाड़ी में रहता है, तो सुनिश्चित कर लें कि उसे पर्याप्त भाषाई उद्दीपन (भाषा के साथ सम्पर्क) मिलता है।

- यह मानकर बात करें कि आप जो कह रहे हैं शिशु वह समझ रहा है। वयस्क अगर ऐसा मानेंगे, तो आपका यह मानना सच होने लगेगा और बच्चे समझने लगेंगे। इसमें 4-5 साल लग सकते हैं। लेकिन जो भाषाई मॉडल प्रस्तुत किए जा रहे हैं बच्चे धीरे-धीरे उनके स्तर तक पहुँच जाते हैं।

- वही भाषाई शैली इस्तेमाल करें जिसमें आप व बच्चा सहज हैं। यह चिन्ता न करें कि आपकी बातचीत बाकी वयस्कों को कैसी लग रही होगी। शिशु के लिए आप जो कह रहे हैं उसके बनिस्बत आपकी बात की जो भावना उसे महसूस होती है वह ज़्यादा महत्वपूर्ण है। शिशु के पहले साल में जिस भी तरह की बातचीत में आप सहज महसूस करें, वह करें।

भाषा सीखने पर परिवेश के प्रभाव के सन्दर्भ में शोध इसके बुनियादी कारणों की समझ को उलझा देते हैं। भाषा सीखने की वास्तविक दुनिया में न तो बच्चे सिर्फ जीव वैज्ञानिक कारणों से स्वत: भाषा सीखने के लिए पूरी तरह तैयार दिखते हैं और न ही वे सिर्फ समाज व परिवेश से ही सीखते हैं (रेट्नर, 1993)। जैसा कि मनोविज्ञान के हर पहलू के साथ होता है, हमें यह देखना होगा कि जीव विज्ञान व परिवेश अन्त:क्रिया कैसे करते हैं।

शुरुआती भाषा का विकास व अवधारणाएँ

भाषाई विकास के बारे में एक रोचक बात यह है कि बच्चों की अन्य वयस्कों व माता-पिता के साथ होने वाली भाषाई अन्त:क्रिया कुछ नियमों का पालन करती है। यद्यपि बच्चे शब्दावली व अवधारणाएँ छोटी उम्र से ही सीखते रहते हैं। वे साथ-साथ यह भी सीखते हैं कि भाषा कैसे गुँथी जाती है। भाषा सीखने की इस पहल पर एक महत्वपूर्ण अध्ययन में जीन बेर्को (1958) ने स्कूल पूर्व व कक्षा एक के बच्चों को कुछ कार्ड दिखाए। बच्चों को इनको देखना था, जबकि एक वयस्क उस पर लिखे शब्दों को ज़ोर से पढ़ता था। बच्चों को वे शब्द ढूँढ़ने थे जो खाली स्थान पर भरे जा सकते हैं क्योंकि इनमें से एक का सही जवाब वुग्स (Wugs) था। वुग्स ढूँढ पाना आपको आसान लग सकता है, पर उसे ढूँढने के लिए बहुवचन के अन्त में आने वाली अन्तिम ध्वनि की सही समझ की ज़रूरत है। यद्यपि बच्चों के उत्तर हमेशा सही नहीं होते थे फिर भी वे बेतरतीब या बगैर किसी समझ व नियम से उभरे उत्तरों के क्रम से बहुत बेहतर थे। इस अध्ययन की महत्वपूर्ण बात यह है कि ये शब्द काल्पनिक थे और इस अध्ययन के लिए ही गढ़े गए थे। इसलिए जवाब पुराने अनुभवों (या नकल से सीखे गए) के आधार पर नहीं दिए जा सकते थे और वे नियमों (पैटर्न) की मदद लेने को बाध्य थे।

क्या भाषाई क्षमता की जगह व अन्य अवधारणाओं की जगह पूर्व निर्धारित व अलग है?

साठ के दशक में एरिक लैननबर्ग (1967) ने कहा कि 18 माह से किशोरावस्था (Puberty) के बीच का समय बेहद संवेदनशील दौर होता है। इसी दौरान बच्चे को अपनी पहली भाषा और उसके नियम को हासिल करना है (इनके अनुसार भी भाषा का एक

जैविक आधार है)। इस बात की पुष्टि के लिए लैननबर्ग ने कुछ बच्चों व वयस्कों, जिनके मस्तिष्क के बाएँ अर्द्ध-गोलार्द्ध पूरे ठीक नहीं थे, कुछ बहरे बच्चे, कुछ जिनके दिमाग का विकास नहीं हुआ था, और कुछ अन्य वयस्क लोग जो सामान्य तरह से भाषा नहीं सीख पाए थे, इन सबका अध्ययन किया (रोजर व फ्रेबर्ग, 1994; अर्नेस्ट फ्रीबर्ग 1995)। लैननबर्ग ने पाया कि अध्ययन में शामिल बच्चे तो अपनी भाषाई क्षमता पुन: प्राप्त कर पाए, किन्तु वयस्क नहीं कर पाए। इसके बारे में लेननबर्ग का मानना है कि यह फर्क इसलिए है कि बच्चों के मस्तिष्क में लचीलापन (Plasticity) था और वे भाषाई क्षमताओं को उन हिस्सों को दे पाए जिनमें कोई भी चोट नहीं थी। चूँकि वयस्कों के मस्तिष्क ढल चुके थे और एक प्रकार से ज़्यादा अनमनीय हो गए थे, इसलिए वयस्कों में यह क्षमता नहीं बची थी कि वे भाषाई क्षमता पुन: हासिल कर लें।

हाल ही में मिले कुछ और बच्चे भी, जो ऐवरॉन की तरह जंगल में रहते थे, इस बात की पुष्टि करते हैं। उनकी भाषाई क्षमता भी अधूरी ही रही। यानी वे भी भाषा हासिल करने के लिए महत्वपूर्ण विशेष समय (Critical Period) को पार कर चुके थे। 1970 में कैलिफोर्निया के एक सामाजिक कार्यकर्ता को जिनी नाम की 13 वर्षीय लड़की मिली। इसे दुनिया से अलग ताले में रखा गया था और वह पूरा बचपन खुलकर हिलने-डुलने से भी प्रतिबन्धित थी व बिलकुल अकेले रखी गई थी। जिनी न तो बोल सकती थी और न ही सीधे खड़ी हो सकती थी। जब भी वह कोई आवाज़ निकालती उसका पिता उसे मारता। वह उससे शब्दों में बात नहीं करता था और उस पर गुर्राता और भौंकता था। जिनी ने पुनर्वास कार्यक्रमों में कई वर्ष गुज़ारे। इसमें चलने-फिरने व बोलने के भी प्रशिक्षण कार्यक्रम थे (कर्टिस व जैनी, 1977)। वह आखिर तक कई शब्दों को समझना सीख गई और टूटे-फूटे वाक्य भी बोलने लगी। लेकिन वह बहुत कम था। सामान्य बच्चे जिस तरह के सवाल पूछते हैं, ऐसा जिनी नहीं कर पाती थी और वह व्याकरण भी नहीं समझ पाती थी। वह अलग-अलग सर्वनामों के बीच विभेद नहीं कर पाती थी और कर्तवाच्य (Active) व कर्मवाच्य (Passive) क्रिया भी अलग नहीं कर पाती। वयस्क होने के बाद भी वह छोटे-छोटे बेतरतीब वाक्यों में ही बोलती थी। जैसे, Father hit leg (पिता ने टाँग मारा), Bigwood, और Ginne hurt (जिनी चोट लगी) आदि। इस बच्ची की यह कहानी इस बात की पुष्टि करती है कि लोगों को बचपन में ही भाषा के नियम सीखने होते हैं, वरना वे भाषा में पूर्ण सक्षम होने से रह जाएँगे।

भाषा सीखने के चरण

सौभाग्य से ज़्यादातर लोग बचपन में ही अपनी भाषा के ढाँचे की स्पष्ट समझ व एक बड़ी शब्दावली हासिल कर लेते हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका देश में ज़्यादातर वयस्क पचास हज़ार या इससे अधिक शब्द सीख जाते हैं। जिस प्रक्रिया से भाषा के ये पहलू विकसित होते हैं, उसमें शोधकर्ताओं ने बहुत रुचि ली है। कई अध्ययनों के माध्यम से वे भाषा अख्तियार करने की प्रक्रिया के प्रमुख पड़ाव को अब समझने लगे हैं।

ध्वनि से सार्थक ध्वनि व अर्थ

अपने पहले शब्द बोलने से पहले शिशु तुतलाते (Babble) हैं। यानी एक ही आवाज़ और ध्वनि-समूह (Syllable) को बार-बार बोलते ही जाना। जैसे- बा, बा, बा अथवा दा, दा, दा। इसकी शुरुआत तीन से छह माह की उम्र में होती है और प्राकृतिक विकास व शारीरिक तैयारी से होती है न कि पुनर्बलन अथवा सुनने की क्षमता से (लॉक, 1993)। बहरे शिशु भी काफी देर तक तुतलाते रहते हैं (लेननबर्ग, रेबेलेस्की और निकोलस, 1963)। तुतलाने की यह प्रक्रिया शिशुओं के स्वर तन्तुओं की कसरत करवा देती है और उसे अलग-अलग आवाज़ को तौल पाने में मदद करती है।

पैट्रिशिया कुहल (1993, 2000) अपने शोध में बच्चे को टेप पर रेकार्ड की गई आवाज़ें सुनाते हैं जिनमें आवाज़ों के टुकड़े व ध्वनि-समूह दोहराए गए हैं। जब आवाज़ या ध्वनि-समूह बदल जाता है तो बच्चे जल्दी से सामने रखे खिलौने की ओर देखना सीख जाते हैं। इस तरीके का उपयोग कर कुहल ने दिखाया है कि लगभग छह माह तक बच्चे सार्वभौमिक भाषाविद् (व्याकरणविद्) होते हैं। बोलना शुरू करने के बहुत पहले से ही शिशु बोली गई बहुत-सी आवाज़ों में से छह अर्थपूर्ण आवाज़ों को छाँट पाते हैं। वे उस हर आवाज़ को अलग पहचान सकते हैं जो इन्सानी भाषा बनाती है लेकिन छह महीने की उम्र तक आते-आते वे अपनी स्वाभाविक (Native) भाषा की आवाज़ों पर केन्द्रित होने लग जाते हैं।

10 से 13 माह की उम्र के बीच बच्चे के पहले शब्द आते हैं। इनमें सबसे पहले महत्वपूर्ण शब्द हैं करीबी लोगों के सम्बोधन। वह सबसे पहले यही सीखते हैं कि अपने करीबी लोगों (यानी मम्मी, पापा, दादा, नाना, मामा, नानी, मौसी आदि) को कैसे पुकारें। इसके अलावा अन्य शब्द हैं परिचित जानवरों के नाम, गाड़ियाँ, खिलौने, खाने-पीने का सामान, शरीर के अंग, कपड़े, घर का सामान, और अभिवादन के शब्द। शिशुओं के पहले शब्द 50 साल पहले भी यही थे और आज भी यही हैं (क्लार्क, 1983)।

वाक्य, लम्बे वाक्य व ज़्यादा उलझे विचारों से सामना

बच्चे जब 18 से 24 माह की उम्र में पहुँचते हैं, वे सामान्यत: दो शब्द वाले कथन बोलने लगते हैं। वे अवधारणाओं को व्यक्त करने का महत्व जल्दी से समझ लेते हैं और भाषा बातचीत व सम्प्रेषण में क्या भूमिका अदा करती है, यह भी जान जाते हैं दो शब्दों वाले कथनों से अपनी बात को सार्थक ढंग से व्यक्त करने के लिए बच्चे हावभाव, बोलने का ढंग, उतार-चढ़ाव व सन्दर्भ का बहुत उपयोग करते हैं और दो शब्दों की अभिव्यक्ति से ही बच्चे बहुत सारा अर्थ भी व्यक्त कर पाते हैं जैसे,

पहचानने के लिए:	कुत्ता देखो
वस्तु की जगह दिखाने के लिए:	किताब वहाँ
दोहराने के लिए:	और दूध

कुछ बचा नहीं:	सब खतम
नकारने के लिए:	भेड़िया नहीं
मिल्कियत:	मेरी टॉफी
गुण बताना:	बड़ी कार
कर्ता-कार्य:	माँ चलो
क्रिया सीधे किसी पर:	तुम्हें मारूँगा
क्रिया सीधे नहीं:	पापा को दो
क्रिया-उपकरण:	चाकू काटो
सवाल:	गेंद कहाँ?

यह उदाहरण उन बच्चों की बात के अनुवाद हैं, जिनकी पहली भाषा अँग्रेज़ी, जर्मन, रूसी, फिनीश, टर्किश और समोअन थीं। हर भाषा में बच्चे द्वारा उपयोग किए गए पहले दो शब्द वाले कथनों में तार (Telegram) में उपयोग होने वाली भाषा जैसे गुण होते हैं। यह बहुत ही संक्षिप्त होती है और इसमें सब गैर ज़रूरी शब्द छोड़ दिए जाते हैं। तार जैसे गुणों वाली भाषा दो शब्द वाले उच्चारणों तक सीमित नहीं होती। जैसे-जैसे बच्चे दो शब्द वाला चरण छोड़ते हैं, वे जल्दी ही तीन, चार और पाँच शब्द वाले उच्चारणों जैसे "माँ आइसक्रीम दो", या "माँ टोनी को आइसक्रीम दो", बोलने लग जाते हैं।

माता-पिता व अन्य परिवार के सदस्यों के साथ होने वाली बातचीत, भाषा की क्षमता के शुरुआती विकास में बहुत महत्वपूर्ण योगदान अदा करती है। लेकिन स्कूल की औपचारिक शिक्षा इसके आगे के विकास के लिए ज़रूरी है। यहाँ बच्चे भाषा संरचना के ज़्यादा गहरे व विस्तृत नियम सीखते हैं, अपने शब्दकोश को बढ़ाते हैं और व्यापक अवधारणाएँ सीखने में भाषा का उपयोग करते हैं। नीचे दी गई तालिका भाषा सीखने के पड़ाव इंगित करती है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि सभी सामान्य बच्चे ठीक इसी तरह नहीं सीखते। कुछ थोड़ा पहले और कुछ थोड़ा बाद में उस चरण तक पहुँचते हैं।

चित्र भाषा सीखने के चरण

0 - 6 माह	स्वर ध्वनियों में अन्तर, छह महीने तक आते-आते ब ब...जैसी ध्वनि निकालना
6 - 12 माह	ब ब ब...ध्वनियाँ जो धीरे-धीरे बोली जा रही भाषा के शब्दों तक पहुँचे, संकेत जो वस्तुओं को इंगित करें
10 - 13 माह	पहले शब्द
12 - 18 माह	औसत शब्दावली 50 से ज़्यादा शब्द
18 - 24 माह	औसत शब्दावली 200 शब्द; दो शब्दों के जोड़े
2 साल	लगातार तेज़ी से बढ़ती शब्दावली; बहुवचन का सही उपयोग; भूतकाल का प्रयोग

3 - 4 साल	औसत बोले गए शब्द समूह 3-4 (वाक्य रूप); हाँ या नहीं का उपयोग; ऐसे सवाल जिनके जवाब हाँ-नहीं में हो; क्यों, क्या, कैसे, कहाँ जैसे प्रश्न; नकारात्मक व आदेशात्मक वाक्य उपयोग की उपयुक्तता की ज़्यादा समझ
5 - 6 साल	दस हज़ार शब्दों की औसत शब्दावली; सरल वाक्यों को जोड़कर उपयोग
6 - 8 साल	लगातार बढ़ती शब्दावली; भाषा नियमों की ज़्यादा समझ, बातचीत की क्षमता का उपयोग और विकास
9 - 11 साल	शब्द परिभाषाएँ जो समानार्थी शब्द शामिल करती हैं; बातचीत के तरीके ज़्यादा बेहतर
11 - 14 साल	शब्दावली में ज़्यादा अमूर्त शब्द शामिल; जटिल व्याकरणीय प्रकारों की समझ; वाक्य में शब्दों की भूमिका की ज़्यादा बेहतर समझ; तुलना, व्यंग्य, अलंकार आदि की समझ
15 - 20 साल	वयस्कों के साहित्य को समझ पाना।

सन्दर्भ

- भाषा व भाषा शिक्षण - द्वितीय वर्ष, डीएड सामग्री, 2013, राज्य शैक्षिक अनुसन्धान परिषद, छत्तीसगढ़।
- एलेनॉर रोश, 1977, "ह्यूमन केटेगराइज़ेशन", वारेन, नील (सं.), *अडवांसेस इन क्रॉस कल्चरल साइकोलॉजी,* 1: 1-72, एकेडेमिक प्रेस।
- बी एफ स्किनर, 1957, *वर्बल बिहेवियर*, न्यू यॉर्क: एपलटन-सेंचुरी-क्रोफ्ट्स।
- आर ब्राउन, 1973, *अ फर्स्ट लैंग्वेज*, केम्ब्रिज, एम ए: हावर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- ए बंदूरा, 1977, *सोशियल लर्निंग थ्योरी*, ईगलवूड क्लिफ, न्यू जर्सी: प्रेंटिस हॉल।
- सी ई स्नो, 1999, "सोशल पर्सपेक्टिव ऑन इमरजेंस ऑफ लैंग्वेज", मेक, विनय बी (सं.), *द इमर्जेंस ऑफ लैंग्वेज,* महवाह न्यूजर्सी, यू एस: लॉरेंस अल्बाम एसोसियट पब्लिशर।
- टोमासेलो, क्रूगर व रतनेर, 1993, "कल्चरल लर्निंग", *बिहेव्यरल एंड ब्रेन साइंसेस*, 16(3), 495-552।
- एस कर्टिस, 1977, *जीनी: ए साइकोलिंग्विस्टिक स्टडी ऑफ ए मॉडर्न डे "वाइल्ड चाइल्ड"*, लंडन: एकेडेमिक प्रेस।
- पी के कुह्ल, 1999, "ह्यूमन एडल्ट्स एंड ह्यूमन इंफेंट्स शो ए 'परसेप्चुवल मैगनेट इफेक्ट' फॉर द प्रोटोटाइप ऑफ स्पीच केटेगरीज़, मंकीज़ डू नॉट", *परसेप्शन एंड साइकोफीज़िक्स*, 50, 93-107।
- अर्नेस्ट फ्रीबर्ग, 1994, "मोर इंपॉर्टेंट देन ए रिबेल ऑफ कॉमन किंग्स: डॉ होव्स एजुकेशन ऑफ लोरा ब्रिजमेन", *हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन क्वार्टर्ली*, 34(3):305।
- सी आर रोजर्स, व एच जे फ्रीबर्ग, 1994, *फ्रीडम टू लर्न,* (तीसरा संस्करण), न्यू यॉर्क: पियरसन।